



THE TIMES OF INDIA

Date: 20-12-18

The Con Job of Creating Jobs

Yashwant Sinha, [The former finance minister is author of India Unmade: How the Modi Government Broke the Economy]

In the last few years, 25 lakh young Indians appeared for a competitive exam for 6,000 Group D jobs in the West Bengal government; 12,453 applied for 18 vacancies for the job of a peon in the Rajasthan government; and 2.8 crore applied for 90,000 vacancies for train drivers, trackmen, etc, in the Indian Railways. The hopefuls for these 'enviable' jobs included engineers, chartered accountants, lawyers and postgraduates. There is frighteningly little scope for India's youth, the bulk of our voting population, to make even a modest livelihood. We are sitting on the country's biggest job crisis, and it takes a very obstinate man to refuse to admit to it. But Prime Minister Narendra Modi was quoted in July 2018 stating that "more than a lack of jobs, the issue is the lack of data on jobs".

The data that does exist is certainly not to his liking. The World Bank says India's employment rate in 2017 fell to 51.9%. According to the Centre for Monitoring Indian Economy (CMIE), it fell from an average of 42.9% in January-October 2016, to 40% in March 2018, mainly on account of demonetisation. As for his own government's data, Modi has made sure it will never emerge. In June 2018, GoI withheld the labour ministry's quarterly employment survey (QES) for 2017-18. QES is likely to be abandoned. Defending this, BJP president Amit Shah said QES figures did not include the self-employed!

And we know how the PM defines self-employment: "If a man selling pakodas outside the TV office takes home ₹ 200 at the end of the day, is that not self-employment?" The other jobs he mentioned were of autorickshaw driver, tea-stall boy and newspaper delivery man. I do not think lowly of any job. But, surely, these are nobody's idea of aspirational work. Modi's claims of employment generation are backed by similar woolly arguments. He has said India produced 17,000 new chartered accountants in 2016-17, and that assuming many started their own practice and hired 20 persons each, one lakh new accounting firm jobs would have resulted. Similar arbitrary statistics have been offered about employment generated by new doctors, lawyers and even sales of commercial and passenger vehicles.

India's level of unemployment is a marker of future social unrest among the youth. Even GoI's own ministers have let slip the truth. In August, during the stir in Maharashtra by Marathas for job reservation, Union road transport and highways minister Nitin Gadkari even went on to ask, 'Where are the jobs?'. Earlier, in May 2017, labour minister Bandaru Dattatreya stated that India was undergoing 'jobless growth'. Behind its veil of bravado, GoI is working hard backstage to embroider its employment generation records. Reports in October said BJP MPs are planning to derail the draft report of Parliament's Estimates Committee on GDP that uses labour ministry data, because it is embarrassing to the government.

A pathetic attempt was made to flaunt the Employees' Provident Fund Organisation (EPFO) enrolment figures, which showed an estimated 70 lakh new jobs created in 2017-18. And while the Central Statistics Office (CSO) endorsed the EPFO statistics to say that 41 lakh new jobs were created from September

2017 to August 2018, the labour bureau's QES showed only two crore new jobs in the formal sector. Is it a surprise, then, that GoI wants to smother QES?

The truth is simple: GoI has simply not created new jobs. No rural infrastructure employment. No development of agriculture or allied small-scale industries. Or putting the Khadi and Village Industries Commission machinery to good use for scaling up rural crafts and manufacture. Under GoI's skill development initiatives, the government claimed it would train 40 crore people in different skills by 2022. Instead, it trained only two crore by mid-2018. The last source of mass employment in the private sector — construction — has also crumbled with the introduction of the Insolvency and Bankruptcy Code (IBC). Many builders are rightfully in jail. But the sector was a huge employer, and GoI has no alternative employment to offer.

Demonetisation was the final straw that broke the camel's back. Hit by both the sloppy introduction of the goods and services tax (GST) and demonetisation, the textile centre of Tiruppur in Tamil Nadu became a ghost town in 2017. According to CMIE, 12.7 million jobs were destroyed one month after demonetisation. Now, the base year for calculating GDP is going to be also changed so that it can be said that India is growing like never before and that this government has wiped out black money and created robust employment. The truth is that the Modi government's sins on the job front are of both omission and commission. Not only has it not created jobs, but its policies have also actually led to de-employment.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 20-12-18

नये विचारों का अभाव

संपादकीय



नैशनल इंस्टीट्यूट फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया (नीति) आयोग ने बुधवार को एक दस्तावेज जारी किया जिसमें अगले तीन वर्षों के दौरान देश में नीति निर्माण का खाका प्रस्तुत किया गया है। इस दस्तावेज को 'स्ट्रैटेजी फॉर न्यू इंडिया एट 75' का नाम दिया गया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपनी भूमिका में कहा कि 'इसे साझा करने का उद्देश्य बहस और परिचर्चा को प्रोत्साहन देना और देश के नीतिगत रुख को आगे और परिष्कृत करने

के लिए प्रतिपुष्टि हासिल करना' है। उस दृष्टि से देखें तो यह नीति पत्र काफी हद तक राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार की पिछले चार साल की भाषा बोलता नजर आता है। दस्तावेज में कहा गया है कि फिलहाल भारत 'सबका साथ, सबका विकास' के दर्शन के साथ 'विकासशील अवस्था' में है। इस रुझान के साथ आगे अर्थव्यवस्था को 41 क्षेत्रों में बांटा गया है। इन्हें भी आगे चार श्रेणियों में बांटा गया है जिन्हें वाहक, आधारभूत, समावेशन और संचालन का नाम दिया गया है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में उस प्रगति का आकलन किया गया है जो हो चुकी है। इसके अलावा बची हुई चुनौतियों, आने वाली बाधाओं के बारे में बात की गई है। इसका अंत सुधारों की एक सूची के साथ हुआ है जिनकी सहायता से हर क्षेत्र के उल्लिखित लक्ष्य को हासिल किया जाना है।

यह दस्तावेज आर्थिक वृद्धि दर को बढ़ाकर 8 फीसदी के स्तर तक पहुंचाने और देश की अर्थव्यवस्था को सन 2030 तक 5 लाख करोड़ डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने की बात करता है ताकि सबके लिए पर्याप्त रोजगार और समृद्धि हासिल की जा सके। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए अर्थव्यवस्था में निवेश की दर को 29 फीसदी से बढ़ाकर 36 फीसदी करने की बात कही गई है। किसानों को कृषि उद्यमी बनाने, शून्य बजट वाली प्राकृतिक खेती को अपनाने और श्रम कानूनों को संहिताबद्ध करने समेत कई उपायों का उल्लेख किया गया है। दूसरी श्रेणियों में भी ऐसे ही सुझाव दिए गए हैं जो नई बोटल में पुरानी शराब की कहावत चरितार्थ करते हैं। उदाहरण के लिए बुनियादी संरचना के तहत आंतरिक नौवहन को बढ़ावा देने और डिजिटल खाई को पाटने, समावेशन में सस्ते घरों को बढ़ावा देने और शिक्षण में सुधार तथा संचालन के तहत दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाओं के क्रियान्वयन की बात कही गई है।

इनके पीछे इरादे नेक हैं लेकिन क्या करना है और कैसे करना है यह स्पष्ट नहीं है। आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय के अनुसार केंद्र की प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी) के तहत मंजूर 55 लाख आवास में से गत सितंबर तक केवल 15 फीसदी मकान पूरे हुए थे। इसी प्रकार प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के तहत मार्च 2019 तक 1.02 करोड़ आवास पूरा करने का लक्ष्य है लेकिन मार्च 2018 तक केवल 34 लाख आवास बने। इस दृष्टि से देखें तो यह दस्तावेज लक्ष्य प्राप्ति को लेकर भरोसा पैदा नहीं करता। यह भी स्पष्ट नहीं है कि प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक नतीजे कैसे सुधारे जाएंगे। इसी तरह कृषि क्षेत्र की दिक्कतें सब्सिडी से दूर होने की स्थिति में नहीं हैं। दस्तावेज में किसानों की आय दोगुनी करने समेत पुरानी बातें दोहराई गई हैं। उस दृष्टि से देखें तो लक्ष्य विश्वसनीय नहीं नजर आते। यह कल्पना करना मुश्किल है कि सन 2022-23 तक 'एक नया भारत' गढ़ने के लिए 'आमूलचूल बदलाव' कैसे लाया जाएगा। नीति आयोग सरकार को नीति निर्माण के लिए जरूरी शोध और बौद्धिक सहायता प्रदान करने की स्थिति में है। वह इसे सही मायनों में बदलाव का एक शक्तिशाली कारक बना सकता है। परंतु इससे संबंधित दृष्टि पत्र एक बार फिर कमजोर साबित हुआ है।

नई दुनिया

Date: 20-12-18

इसरो की नई उड़ान

संचार उपग्रह जीसैट-7 ए संचार सेवाओं को बल देने के साथ ही वायु सेना की क्षमता बढ़ाने में भी मददगार होगा।

संपादकीय



सफलता की नित नई उड़ान भर रहे इसरो यानी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन की ओर से संचार उपग्रह जीसैट-7 ए का सफल प्रक्षेपण इसलिए विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि यह संचार सेवाओं को बल देने के साथ ही वायु सेना की क्षमता बढ़ाने में भी मददगार होगा। यह ड्रोन आधारित अभियानों को भी मजबूती प्रदान करेगा। इसके चलते भारतीय वायु सेना की ताकत कई गुना बढ़ने का अनुमान है। दरअसल इसीलिए इसे सैन्य उपग्रह की भी संज्ञा दी जा रही है। श्रीहरिकोटा से अंतरिक्ष भेजे गए 2250 किलोग्राम वजनी इस उपग्रह का सफल प्रक्षेपण बीते 35 दिनों में तीसरा कामयाब अभियान है। इसके पहले इसरो ने कहीं अधिक वजनी उपग्रह को प्रक्षेपित किया था और उसके पहले एक भारतीय उपग्रह के साथ आठ अन्य देशों के करीब 30 उपग्रह भी प्रक्षेपित किए थे। सफलता की ऐसी गाथा अपने आप में एक मिसाल है।

यह लगभग तय है कि आने वाले समय में भी इस तरह की और मिसाल कायम होने वाली है, क्योंकि अगले साल इसरो की ओर से 32 रॉकेट अथवा उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे जाने हैं। इनमें सबसे महत्वाकांक्षी चंद्रयान-2 भी शामिल है। इसरो ने हाल के वर्षों में जैसी करिश्माई सफलताएं हासिल की हैं उन्हें देखते हुए इसके प्रति सुनिश्चित हुआ जा सकता है कि वह आगे भी देश को आगे ले जाने के साथ दुनिया में अपना नाम कमाने का काम करता रहेगा। इसरो ने दुनिया भर में जैसी प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है और उसमें जिस गति से वृद्धि हो रही है वह भारतीयों के लिए गर्व का विषय है, लेकिन गर्व के इन क्षणों में इस पर विचार करना समय की मांग है कि आखिर जिस तरह इसरो उम्मीदों पर खरा उतरने के साथ देश की प्रगति में सहायक बन रहा है वैसे ही अन्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थान क्यों नहीं बन पा रहे हैं?

हालांकि इसरो देश की संचार और सैन्य क्षमता बढ़ाने के साथ अन्य अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है, लेकिन यह भी स्पष्ट है कि अंतरिक्ष तकनीक सब कुछ नहीं कर सकती। वैसे तो देश के सभी वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थानों को इसरो से प्रेरणा लेनी चाहिए, लेकिन सबसे अधिक अपेक्षा उन संगठनों से है जिन पर सैन्य उपकरण और साथ ही गैर सैन्य उपकरण बनाने की जिम्मेदारी है।

यह तकनीक का युग है और इसमें भारतीय संस्थानों को वैसी ही छाप छोड़नी होगी जैसी इसरो छोड़ रहा है। इसरो की सफलताओं औरों के लिए सीख बननी चाहिए। एक बारगी मिसाइल निर्माण के मामले में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की सफलताओं पर संतोष जताया जा सकता है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं कर सकते कि अन्य संगठन अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। हल्का लड़ाकू विमान तेजस वायु सेना का हिस्सा बन गया, लेकिन इसके निर्माण में जरूरत से ज्यादा समय लगा। भारत को राइफल जैसे हथियार भी बाहर से आयात करने पड़ते हैं। इसी तरह अन्य कई साधारण से सैन्य साजो-सामान के लिए भी हम कुल मिलाकर दूसरे देशों पर निर्भर हैं। तथ्य यह भी है कि भारत को तमाम भारी मशीनें और अन्य अनेक आधुनिक उपकरण भी आयात ही करने पड़ते हैं।

पेरिस समझौते पर बनी सहमति

रविशंकर

पोलैंड के शहर काटोविस में संयुक्त राष्ट्र के 24वें जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में पेरिस समझौते को लागू करने की दिशा में बड़ी सफलता मिली है। करीब 197 देशों के प्रतिनिधियों ने पेरिस जलवायु समझौते के लक्ष्य हासिल करने के लिए नियम-कायदों को अंतिम रूप दिया। 2015 में हुए पेरिस जलवायु समझौते में वैश्विक तापमान में हो रही वृद्धि को दो डिग्री सेल्सियस से कम पर रोकने का लक्ष्य तय किया गया था। मालूम हो, पेरिस समझौता 2020 से प्रभावी होगा। धरती को जिन पर्यावरणीय संकटों से जूझना पड़ रहा है, उनसे निपटने का यही रास्ता है कि दुनिया के सारे देश मिल कर पेरिस समझौते पर तेजी और ईमानदारी के साथ अमल करें। कोई देश अपने यहां विकास की रफ्तार नहीं रोकना चाहता, ऐसी पाबंदी नहीं चाहता जो उसके हितों पर असर डालने वाली हो।

आंकड़े बताते हैं कि 19वीं सदी के बाद से पृथ्वी की सतह का तापमान 3 से 6 डिग्री तक बढ़ गया है। हर 10 साल में तापमान में कुछ न कुछ वृद्धि हो ही जाती है। तापमान में वृद्धि के आंकड़े मामूली लग सकते हैं लेकिन इन पर ध्यान नहीं दिया गया तो यही परिवर्तन आगे चलकर महाविनाश का रूप ले लेगा। समुद्र का जल स्तर बढ़ता जा रहा है। जंगलों में भी भीषण आग, लू और तूफान जैसी खबरें आ रही हैं। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार ग्रीन हाउस गैसों पर रोक नहीं लगाई गई तो वर्ष 2100 तक ग्लेशियरों के पिघलने के कारण समुद्र का जल स्तर 28 से 43 सेंटीमीटर तक बढ़ जाएगा। उस समय पृथ्वी के तापमान में भी करीब तीन डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हो चुकी होगी। ऐसी स्थितियों में सूखे क्षेत्रों में भयंकर सूखा पड़ेगा तथा पानीदार क्षेत्रों में पानी की भरमार होगी। भारत जैसे कम गुनहगार देशों को चिंतित करने वाला है कि विकसित देशों के मुकाबले कम ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जित करने वाले भारत जैसे विकासशील तथा दुनिया के गरीब देश इससे सर्वाधिक प्रभावित होंगे। इस विषय पर औद्योगिक देशों का रवैया ढुल-मुल बना हुआ है। तथाकथित विकसित देशों ने अपना रवैया नहीं बदला तो पृथ्वी पर तबाही तय है। इस तबाही को कुछ हद तक सभी देश महसूस भी करने लगे हैं। भविष्य की तबाही का आईना हॉलीवुड फिल्म 'द डे आफ्टर टूमरो' के माध्यम से दुनिया को परोसा भी गया।

धरती पर बढ़ते तापमान के पीछे प्राकृतिक कारण नहीं हैं, बल्कि इंसान की उत्पादन और निर्माण की गतिविधियां ही असल में तापमान बढ़ा रही हैं। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, और कभी न खत्म होने वाले कचरे जैसे कि प्लास्टिक का इस्तेमाल जिस तेजी से हो रहा है, वो दिन दूर नहीं है, जब पूरी मानव जाति का ही अंत हो जाएगा। एक रिपोर्ट कहती है कि साल 2017 में इंसानों ने दुनियाभर में जितनी गर्मी पैदा की है, वह हिरोशिमा वाले 4 लाख परमाणु बमों के बराबर है। 1950 के बाद से इस गर्मी के बढ़ने का सबसे बड़ा कारण ग्रीनहाउस गैसों हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक, दुनिया में जलवायु परिवर्तन के चलते 153 अरब कामकाजी घंटे बर्बाद हुए हैं। लांसेट की यह रिपोर्ट भारत के लिए सबसे ज्यादा चेतावनी भरी है, क्योंकि इसमें अकेले भारत की क्षति 75 अरब कार्य घंटों के बराबर है। यह जलवायु परिवर्तन के चलते पूरी दुनिया में हुई कुल क्षति का 49 फीसदी है। इतना ही नहीं खराब मौसम से हुई घटनाओं से धन की भी काफी हानि होती है। बीते दो दशकों में भारत को 67.2 बिलियन डॉलर की हानि हुई है। वहीं, वैश्विक तौर पर 3.47 ट्रिलियन डॉलर का नुकसान हुआ है।

भारत जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में अहम देश है क्योंकि उसकी अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही है। वह चीन जैसे देशों के साथ मिलकर अमीर देशों पर दबाव डालता है कि कार्बन उत्सर्जन कम करें। भारत की मांग है कि अमीर देश विकासशील देशों को आर्थिक मदद के साथ-साथ और टेक्नोलॉजी दें ताकि वे भी साफ-सुथरी ऊर्जा के संयंत्र लगा सकें। भारत की 60 प्रतिशत आबादी अब भी गांवों में रहती है। जलवायु परिवर्तन से खेती, पशुपालन और ग्रामीण रोजगार पर बड़ा असर पड़ सकता है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालयी और तटीय इलाकों में रहने वाली आबादी पर सबसे अधिक चोट पड़ेगी। यही वजह है कि अतीत में मौसम परिवर्तन की समस्या को लेकर जहां गरीब और विकासशील देश हमेशा ही दबाव महसूस करते रहे हैं, वहीं अमीर देश अपने यहां कार्बन का स्तर कम करने के लिए ठोस कदम उठाते नहीं दिखे हैं। पेरिस से लेकर मोरक्को सम्मेलनों में जितने भी मंथन हुए हैं, सब में अमृत विकसित व अमीर देशों के हिस्से ही आया है, जबकि विष का पान गरीब और विकासशील देशों को करना पड़ा है। ऐसे में पेरिस जलवायु समझौते पर विश्व का एकमत होना बड़ी सफलता है। यह एक ऐसी समस्या है, जिसमें बिना जनसमूह की भागीदारी के सफलता नहीं हासिल हो सकती।



Date: 19-12-18

कर्जमाफी के बाद

संपादकीय

सरकार बनते ही किसानों के कर्ज माफ। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में मुख्यमंत्री ने शपथ ली और कुछ ही घंटों में यह खबर आ गई कि दोनों राज्यों की सरकारों ने किसानों के कर्ज माफ कर दिए हैं। उम्मीद है कि राजस्थान से किसी भी समय यह खबर आ सकती है। वैसे इस कर्जमाफी को कांग्रेस की किसी नीति से जोड़कर देखने की जरूरत नहीं है। अगर किसी और पार्टी की सरकार बनती, तो वह भी सबसे पहले किसानों की कर्जमाफी ही करती। उत्तर प्रदेश में भाजपा ने सरकार बनाने के बाद सबसे पहले जो कुछ घोषणाएं की थीं, उनमें किसानों की कर्जमाफी भी एक थी। दरअसल कर्जमाफी इस समय किसी एक दल का एजेंडा नहीं, बल्कि हर दल की नीति है। इस समय हर दल सबसे पहला वादा किसानों की कर्जमाफी का ही कर रहा है। हम कह सकते हैं कि कर्जमाफी इस देश में फिलहाल एक ऐसा मुद्दा है, जिस पर एक राष्ट्रीय आम सहमति है। यह बात अलग है कि इस पर जब राजनीति चलती है, तो एक-दूसरे पर आरोप लगाए जाते हैं। राजस्थान, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्रियों के शपथ ग्रहण समारोह से लौटने के बाद कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी का पहला बयान यही था कि जब तक देश भर के किसानों के कर्ज माफ नहीं हो जाते, वह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को चैन की नींद नहीं सोने देंगे।

बेशक, इस समय जिस तरह का कृषि संकट है, उसमें किसानों की कर्जमाफी एक फौरी जरूरत भी है। ठीक वैसे ही, जैसे कई मौकों पर उद्योगों, खासकर सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के कर्ज माफ होते रहे हैं। कर्जमाफी के पीछे का एक तर्क यह भी है कि दो साल पहले हुई नोटबंदी का सबसे ज्यादा नुकसान किसानों को हुआ, क्योंकि एक तो उनका सारा कारोबार नगद ही होता है और जब नोटबंदी हुई, उस समय वे कैशलेस नाम की चीज से कोसों दूर थे, इसलिए कर्जमाफी तत्काल राहत का काम कर सकती है। पिछले कुछ समय में जिस तरह से कर्ज में डूबे किसानों द्वारा आत्महत्या की एक

के बाद एक खबरें आई, उसने भी सरकारों और राजनीतिक दलों पर कर्जमाफी का दबाव बनाया। लेकिन यह भी एक सच है कि कोई भी राजनीतिक दल, कोई भी अर्थशास्त्री और यहां तक कि कोई भी किसान संगठन यह नहीं कह रहा कि कर्जमाफी से कृषि संकट खत्म हो जाएगा और किसानों के सारे दुख दूर हो जाएंगे। सब इसे तत्काल राहत ही मान रहे हैं। खुद राहुल गांधी ने विधानसभा चुनाव नतीजों के बाद अपनी प्रेस कॉन्फ्रेंस में यह स्वीकार किया था। एक तरफ, जहां कर्जमाफी पर आम सहमति जैसी दिखाई दे रही है, वहीं कृषि संकट के दूरगामी समाधान को लेकर देश में एक सर्वदलीय मौन भी पसरा हुआ है।

कृषि संकट का स्थाई समाधान क्या होगा, यह ठीक तरह से कोई नहीं बता रहा, यहां तक कि दुनिया भर के आर्थिक नीति-नियंता भी इस पर मौन साधे हुए हैं। हमारी सरकारों के पास कृषि क्षेत्र के लिए कुछ ही नुस्खे हैं- सस्ते कर्ज देना, बहुत दबाव पड़ने पर जिन्हें बाद में माफ कर दिया जाए। सब्सिडी देना, जो किसानों से ज्यादा दूसरे ही वर्गों की मदद करती है और ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा जैसे कम भुगतान वाले अवसर पैदा करना। लेकिन ये सारे नुस्खे पिछले कुछ साल में लगातार नाकाम साबित हो रहे हैं। किसानों के दुखों का निवारण इस पिटी-पिटाई लीक के पार कहीं है, जहां फिलहाल कोई जाता नहीं दिख रहा।
